



ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 883-885
www.allresearchjournal.com
Received: 24-11-2016
Accepted: 26-12-2016

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय प्रखण्ड कॉलोनी,
नाथनगर, भागलपुर, बिहार

वेदों में भक्ति के साधन का स्वरूप

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर

प्रस्तावना

सामान्यतः वेद को भक्तिप्रधान साहित्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। ज्ञान, कर्म एवं उपासनापरक काण्डों से समन्वित वैदिक साहित्य में भक्ति उपासना काण्ड में ही अन्तर्भुक्त है। भक्ति की भावधारा भले ही पुराणों की तरह वेद में प्रखर न हो, मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों के हृदयाङ्गन में निश्चय ही प्रवहमाना रही होगी। तभी तो परम सत्ता की विविध अभिव्यक्तियों के आवाहन एवं निरूपण में वे इतने भाव विभोर हो उठते हैं कि जड़-चेतन के बीच समन्वय ही नहीं, संवाद भी स्थापित होता है। विश्वामित्र-नदी संवाद के मन्त्रद्रष्टा का हृदय भक्ति के रसधार से क्या अछूता रहा होगा?

प्रस्तुत शोधालेख में समस्त ज्ञान-विज्ञान के उद्गम वेदों में भक्ति की सत्ता एवं साधन के स्वरूप को अनावृत्त किया जायेगा। वैदिक भक्ति का मार्ग कर्तव्य विमुखता का मार्ग कभी नहीं रहा है। वहाँ कर्तव्यपरायणता की प्रेरणा ही प्रधान है। यहाँ भक्ति सत्य का दर्शन कराते हुए अज्ञानान्धकार से मुक्त करती है तथा अमरत्व की आकांक्षा उत्पन्न करती है-

“असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मांसृतं गमय ॥” [1]

वेदों में भक्ति शब्द का वास्तविक अर्थ है- सेवा करना, जो भज् धातु में क्तिन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। वह सेवा अनेक प्रकार से सम्पन्न होती है। भक्ति का लक्षण शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में इस प्रकार किया गया है- ‘सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे’ अर्थात् परमेश्वर में अविचल और ऐकान्तिक भावना तथा आत्मसमर्पण की उत्कट आकांक्षा को ही भक्ति कहा गया है। वेद में ब्रह्म के प्रति साधक की विनम्रता और आत्मलघुता देखते ही बनती है-

“यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥” [2]

वेदों में साध्य भक्ति का सुन्दर संकेत है। वेद ने तो ब्रह्म को रस कहा है- “रसो वै सः ॥” [3] भक्तों के लिए स्थाणु एवं नीरस ब्रह्म मधु ब्रह्म बन जाता है। “मधु क्षरति तद् ब्रह्म ॥” समस्त रसों के उज्ज्वल प्रस्रवन के रूप में भी उसका वर्णन आता है- “सर्वगन्धः सर्वरसः ॥” [4] ऐसे परमाह्लादक परब्रह्म से भला कौन नहीं तृप्त होना चाहेगा? इसीलिए तो यजुर्वेद का राजर्षि सहसा ही कह उठता है -

“मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत
चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पय-
आत्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत
पशून् मे तर्पयत गणान् मे तर्पयत
गणा मे मा वितृषन् ॥” [5]

अर्थात् “हे प्रभु! मेरे मन को तृप्त कर दो, मेरी वाणी को तृप्त कर दो तथा मेरे प्राणों को तृप्त कर दो। मेरे नेत्र एवं सर्वेन्द्रिय भी तृप्त हो जायें। मेरी आत्मा को तृप्त करते हुए मेरी प्रजाओं को तृप्त करो और पशुओं को भी तृप्त करो एवं मेरी प्रजा प्यासी न रह जाय ॥”

Corresponding Author:
डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय प्रखण्ड कॉलोनी,
नाथनगर, भागलपुर, बिहार

उपर्युक्त भक्ति की प्राप्ति जिन साधनों से संभव है, उनका भी संकेत वैदिक साहित्य में स्थान विशेष पर संकेतित है। अतएव संक्षेपतः इन साधनों को निम्नलिखित शीर्षकों में विवेचित किया जा सकता है।

1. सत्सङ्ग :- भक्ति प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन सत्सङ्ग माना जाता है। इसी प्रसङ्ग में वैदिक संहिता का यह मन्त्र द्रष्टव्य है

“पुनर्ददतान्धता जानता संगमेमहि ।।” [6]

इस मन्त्र में भक्ति के हेतुभूत सत्सङ्ग का स्पष्ट वर्णन है। परमहंस संहिता स्वरूप श्रीमद्भागवत में भी यत्र-तत्र सत्सङ्ग को ही भक्ति प्राप्ति का कारण माना गया है। एकादश स्कन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्सङ्ग की महिमा का विस्तार से गान किया है—

“न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त न दक्षिणा ।।”

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
ययावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ।।” [7]

अर्थात् अपने प्रिय भक्त उद्धवजी से भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है कि योग, सांख्य, धर्म स्वाध्याय, तपस्या, व्रत, यज्ञादि साधनों के द्वारा भी परमात्मा की प्राप्ति सुलभ नहीं हो पाती है। एक मात्र सत्सङ्ग ही पराभक्ति के द्वारा आत्मसाक्षात्कार में सहायक होता है। इसी पुराण के तृतीय स्कन्ध के भक्ति योग प्रसङ्ग में भगवान् कपिलाचार्य ने माता ‘देवहूति’ से कहा है—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपर्ववर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ।।” [8]

अर्थात् महापुरुषों की संगति से भगवान् के पराक्रमों का सम्यक् ज्ञान कराने वाली तथा हृदय और कानों के लिए रसायन स्वरूप कथायें होती हैं। उनका सेवन करने से अपवर्ग के मार्ग में शीघ्र ही श्रद्धा, प्रेम और भक्ति का क्रमशः उदय होता है। इसी बात की पुष्टि रामचरितमानस में भी मिलती है —

“भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी ।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।।” [9]

यह पराभक्ति परम स्वतंत्र एवं समस्त गुणों की निधि होती है और इसे सत्सङ्ग के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

2. श्रद्धा — श्रद्धा भी भक्ति का मुख्य साधन है। ‘श्रत् दधातीति श्रद्धा’— इस शब्दानुशासनिक व्युत्पत्ति में इसका अर्थ श्रत् नाम वाली सूत्रा को धारण करना है। वस्तुतः श्रद्धा के द्वारा ही व्यक्ति के स्वभाव का परिचय मिलता है। शुक्लयजुर्वेद का निम्नांकित मन्त्र भी श्रद्धा के स्वरूप को दिग्दर्शित करता है — “श्रद्धया सत्यमाप्यते ।।” [10] पुनः ऋक् संहिता भी श्रद्धा के स्वरूप पर प्रकाश डालती हुई गर्जन करती है कि— “श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ।।” [11] उपर्युक्त मन्त्रों का तात्पर्य है कि श्रद्धा के बिना सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति असम्भव है तथा यही श्रद्धा प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित होकर उन्हें श्रद्धावान् बनाती है। श्रद्धा शब्द की परिभाषा करते हुए आद्यशंकराचार्य ने अपने विख्यात ग्रन्थ ‘विवेक चूडामणि’ में कहा है।

“शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्धयधारणम्
सा श्रद्धा कथिता सद्भिः यथा वस्तूपलभ्यते ।।” [12]

अर्थात् शास्त्रों एवं गुरुओं के वचन में सत्यता का धारण ही श्रद्धा है। इसी के द्वारा स्वतः सिद्ध स्वरूप परमात्मा की उपलब्धि होती है। भगवद् गीता के 17 वें अध्याय में भी इस शब्द की सुस्पष्ट व्याख्या करते हुए भगवान् श्री कृष्ण का कहना है कि —

“त्रिविद्या भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रुणु ।।” [13]

अर्थात् श्रद्धा तीन प्रकार की होती है, जो स्वभावजा अर्थात् जन्मान्तर में किये हुए धर्म — अधर्म आदि के जो संस्कार मरण के समय अभिव्यक्त हुआ करते हैं, से उत्पन्न होती है। पुनः श्रद्धा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वासुदेव श्री कृष्ण ने कहा है कि यह सत्वानुरूपा होती है। अर्थात् सभी प्राणियों के भिन्न- भिन्न संस्कारों से युक्त अन्तःकरण के अनुरूप होती है।

3. अद्रोह :- अद्रोह के प्रसङ्ग में शुक्लयजुर्वेद का निम्नांकित मन्त्र द्रष्टव्य है —

“मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।।” [14]

यह मन्त्र समस्त संसार में मित्रभाव का उद्घोष करता है। हम मानवों का यह कर्तव्य है कि समस्त प्राणियों में एक अखण्ड भाव का ही दर्शन करें तथा यथाशक्ति जगत् के कल्याण में संलग्न रहें। वस्तुतः द्रोहहीनता भगवत् भक्तों का लक्षण है। स्मृति ग्रन्थ रूप भगवद् गीता भी इस बात का समर्थन करती है—

“निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।।” [15]
“अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।।” [16]

4. दान :- दान शब्द का अर्थ त्याग होता है। कहीं-कहीं उदारता के अर्थ में भी विद्वानों ने इसका प्रयोग किया है। अपने अधिकार को त्याग कर दूसरों के स्वामित्व में किसी पदार्थ को स्थापित करना ही इस शब्द का अर्थ होता है। वेदमन्त्रों का अनुशीलन करने पर अथर्ववेद का अधोलिखित मन्त्र निम्नांकित है

“शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त संकिर ।।” [17]

मन्त्र कहता है कि मानवों को सौ हाथों के द्वारा अन्नादि का संचय करना चाहिए तथा हजार हाथों के द्वारा उदारतापूर्वक उसका योग्य पात्रों में वितरण भी करना चाहिए। पुनश्च ऋक्संहिता का निम्नांकित मन्त्र भी द्रष्टव्य है —

“केवलाघो भवति केवलादी ।।” [18]

अर्थात् जो व्यक्ति अपने पास संचित अन्नादि का केवल अपने लिए ही उपभोग करता है तो वह स्वयं पाप का ही भक्षण करता है। इसी भाव का समर्थन करती हुई भगवती गीता भी कहती है।

“यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।” [19]

5. ब्रह्मचर्य :- ब्रह्मचर्य भक्ति प्राप्ति का प्रधानभूत साधन है। इसका अर्थ संयम होता है एवं इसके द्वारा ही साधक के शरीर में दिव्य शक्तियाँ सुरक्षित रहती हैं। शास्त्रों में इसकी अनन्त महिमा गायी गई है। इसके सम्बन्ध में अथर्ववेद का अधोलिखित मन्त्र अवलोकनीय है —

“ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमाप्नुत ।।” [20]

अर्थात् ब्रह्मचर्य की साधना एवं तपस्या के द्वारा देवताओं ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है। भगवान् शंकर ने विन्दु (वीर्य) धारण को ही जीवन एवं विन्दुपात को मरण की संज्ञा दी है। इसी कथन की पुष्टि कठोपनिषद् श्रुति भी करती है –

“सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।।” [21]

6. मोहादि षट् विकार निवारण – अध्यात्म शास्त्र में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य – ये ही षट् विकार कहलाते हैं। पराभक्ति की प्राप्ति के लिए इन विकारों पर विजय की महती आवश्यकता होती है। इसके अभाव में इन्द्रिय रूप छोड़े साधकों को उन्मार्गगामी बना देते हैं तथा अन्ततः उनका पतन हो जाता है। इस सन्दर्भ में वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन करने पर निम्नांकित मन्त्र दृष्टिगोचर होते हैं –

“उलूकयातुं शुशुलुकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं हृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र !।।” [22]

अर्थात् दिन में प्रकाश को ही अन्धकार देखने वाले उलूक के समान आचरण करने वाले मोह रूपी राक्षस का, भेड़िये के समान आचरण करने वाले क्रोधरूपी राक्षस का, कुत्ता के समान आचरण करने वाले मत्सर रूपी राक्षस का तथा कोक पक्षी के समान आचरण करने वाले काम रूपी राक्षस का, गरुड़ के समान आचरण करने वाले मद्रूपी राक्षस का तथा गृध्र के समान आचरण करने वाले लोभ रूपी राक्षस का सद उपायों के द्वारा विनाश कर साधकों को अपने कर्तव्य पथ पर निरन्तर अग्रसर होते रहना चाहिए।

इस प्रकार वेदों की प्रामाणिक संहिता भागों में भी भक्ति प्राप्ति के विविध साधनों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इन सारे साधनों में सत्सङ्ग नन्दन वन के समान, संयम कल्पवृक्ष के समान तथा श्रद्धा कामधेनु तुल्य है। अन्त में उपसंहार के रूप में भक्ति के साधन स्वरूप निम्नलिखित मन्त्र भी द्रष्टव्य है –

“विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।

यद् भद्रं तन्न आसुव ।।” [23]

“नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।

भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ।।” [24]

संदर्भ सूची:

1. अक्षुपनिषद्- प्रथम खण्ड
2. अथर्ववेद- 10/08/01
3. तैत्तिरीयोपनिषद्- 2/07
4. छान्दोग्योपनिषद्- 03/14/02
5. यजुर्वेद- 06/31
6. ऋग्वेद- 05/51/15
7. श्रीमद्भागवतपुराण- 11/12/01-02
8. वही- 03/25/25
9. श्रीरामचरितमानस- उत्तरकाण्ड- 44/03
10. शुक्ल यजुर्वेद- 19/30
11. ऋक्संहिता 10/151/05
12. विवेकचूडामणि- 26
13. श्रीमद्भगवद्गीता- 17/02
14. शुक्ल यजुर्वेद- 36/18
15. श्रीमद्भगवद्गीता- 11/55

16. वही- 12/13
17. अथर्ववेद- 03/24/05
18. ऋक्संहिता- 10/117/06
19. श्रीमद्भगवद्गीता- 03/13
20. अथर्ववेद- 11/07/19
21. कठोपनिषद्- 01/02/15
22. ऋक्संहिता- 09/07/06
23. वही- 05/82/05
24. अथर्ववेद- 11/02/16